११^{२} = १२१-१००=२१

१२^{२}= १४४-१२१=२३

१३^{२} = १६९-१४४=२५

१४^{२} = १९६-१६९=२७

१५^{२} = २२५-१९६=२९

१६^{२} = २५६-२२५=३१

१७^{२} = २८९-२५६=३३

शून्य की मूल अवधारणा वेदों की ऋचाओं से ही प्रस्फुटित हुई है। ऋग्वेद में 'शुनम्' पद अनेकशः प्रयुक्त हुआ है। यथा-

शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति।।[३२]

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।[३३]

यह मन्त्र ऋग्वेद में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। सायण ने इस मन्त्र में स्थित शुनम् का अर्थ 'प्रवृद्धम्' एवं 'वृद्धम्' किया है। इसके अतिरिक्त अन्य मन्त्रों में भी शुनं का प्रयोग द्रष्टव्य है -

शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।।[३४]

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।

शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय।।[३५]

शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः।[३६]

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।

शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धनम् ।[३७]

त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम्।[३८]

शुनमष्ट्राव्यचरत्कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः।[३९]

शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा।[४०]

आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥[४१]

---

३२. ऋग्वेद १.११७.१८

३३. ऋग्वेद ३.३०.२२, ३.३१.२२, ३.३२.१७, ३.३४.११, ३.३५.११, ३.३६.११, ३.३८.१०, ३.३९.९, ३.४३.८, ३.४८.५, ३.४९.५, ३.५०.५, १०.८९.१८, १०.१०४.११

३४. ऋग्वेद ४.३.११

३५. ऋग्वेद ४.५७.४

३६. ऋग्वेद ४.५७.५

३७. ऋग्वेद ४.५७.८

३८. ऋग्वेद ६.१६.४

३९. ऋग्वेद १०.१०२.८

४०. ऋग्वेद १०.१२६.७

४१. ऋग्वेद १०.१६०.५

इन मन्त्रों में उल्लिखित शुनम् पद की व्याख्या सायण ने 'सुखम्' किया है। शुनः शब्द से 'शुनः सम्प्रसारणं वा च दीर्घत्वम्' से दीर्घ करके शून्यम् पद निष्पन्न होता है। "यावादिभ्यः कन्" गुणसूत्र (५.४.२९) के अन्तर्गत शून्य पद 'शून्य रिक्ते' अर्थात् रिक्त अर्थ में व्याख्यायित किया गया है। अधोलिति मन्त्रों में शून एवं शून्य शब्द अभाव अथवा रिक्त अर्थ में प्रयोग किया गया है –

मा सोम्यस्य शभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी।[४२]

शून्यैषी निर्ऋते।[४३]

इस प्रकार समृद्धिवाचक अथवा सुखबोधक शुन पद ही व्यवृद्धिबोधक होने पर शून्य हो जाता है। कोश में भी पूर्णत्वबोधक पूर्ण शब्द रिक्त का बोधक होने पर शून्य रूप में प्रयुक्त किया गया है।[४४] पूर्ण शब्द का प्रयोग उपनिषद् में किया गया है–

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥[४५]

शून्य अर्थ में तुच्छ शब्द भी प्रयुक्त होता है। ऋग्वेद में तुच्छ शब्द तुच्छ्य रूप में अनेकशः प्रयुक्त हुआ है– **तुच्छ्यान् कामान् करते सिष्विदानः।**[४६] **तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यतासीत्।**[४७] वेदों में 'ख' शब्द शून्य का द्योतक प्रतीत होता है। यजुर्वेद में "ॐ खं ब्रह्म" (४०.१७) के द्वारा 'ब्रह्म को आकाशवत् शून्य' कहा गया है। गणित में शून्य उस पूर्ण या अनन्तशक्ति का सूचक है, जिससे सभी संख्याएँ उत्पन्न हुई है।

वैदिक संहिताओं में ज्यामितीय सिद्धान्तों से सम्बन्धित सन्दर्भ समुपलब्ध होते हैं। ऋग्वैदिक मनीषी वृत्त, त्रिभुज जैसे ज्यामिति आकृतियों से अवगत थे। ऐसा प्रतीत होता है कि रेखागणित का आदिम बीज ऋचाओं में ही प्रस्फुटित हुआ। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि विष्णु ने ३६० अंश से युक्त कालचक्र को घुमाया।[४८] इस मंत्र में एक ऐसा वृत्त अभिव्यञ्जित हो रहा है जिसमें चार खण्ड (त्रिज्या) और नब्बे अंश होता है। अन्यत्र कहा गया है कि जिस रथ के एक चक्र की बारह प्रधियाँ, तीन नाभियाँ हैं, उसका ज्ञाता कौन है? उसमें तीन सौ साठ मेखे ठुकी हैं, जो कभी ढीली नहीं होती।[४९] इस मंत्र में भी ३६० अंश से युक्त वृत्त का वर्णन है। ऋग्वेद में ३६० अंश से युक्त वृत्त की परिधि के लिए **'प्रउग'** इस पारिभाषिक पद का प्रयोग किया गया है– "परिधिः क आसीत्" (१०.१३०.३) कहकर मन्त्र के उत्तरार्द्ध में 'प्रउगं किम्' कहा गया है। शुल्बसूत्र में प्रउग शब्द समद्विबाहुत्रिभुज (Isosceles Triangle) का वाचक है। वैदिक आर्य त्रिकोण से परिचित थे। अथर्ववेद में

---

४२. ऋग्वेद, १.१०५.३

४३. अथर्ववेद, १४.२.१९

४४. विलियम्स, संस्कृत-इंग्लिश-शब्दकोश, ओरियण्टल पब्लिशर्स, दिल्ली, पृष्ठ ६४२

४५. बृहदारण्यकोपनिषद्

४६. ऋग्वेद ५.४२.१०

४७. ऋग्वेद १०.१२९.३

४८. ऋग्वेद १.१५५.६ चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीरवीविपत्।

४९. ऋग्वेद १.१६४.४८, अथर्ववेद १०.८.४ – द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत। तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽपिता: षष्टिर्न चलाचलासः॥

'त्रिभुज' का उल्लेख है।[५०] यजुर्वेद में वर्णन है कि सूर्य की किरणें तिरछी होकर आती हैं, नीचे फैल जाती हैं और फिर ऊपर जाती हैं।[५१] गणितीय दृष्टि से विचार करने से ऐसा द्योतित होता है कि इस मंत्र में सूर्य की रश्मियों के बहाने से एक नीचे जाने वाली और एक ऊपर आने वाली अर्थात् दो तिरछी रेखाओं और एक नीचे की रेखा से बनने वाले त्रिभुज की रूपरेखा दी गयी है। ऋग्वैदिक मन्त्र में परिधि और व्यास के अनुपात को त्रित पद से व्यवहृत किया गया है–

भिनद्वलस्य परिधीरिव त्रितः।[५२]

त्रित शब्द को कपिलदेव द्विवेदी महोदय ने पाई (वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात) का प्रतीक माना है।[५३] ऋग्वेद में भिनद्वलस्य परिधीः का मान त्रित– १/३ कहा गया है, जो त्रुटिपूर्ण है। शुद्ध अनुपात २२/७ होना चाहिए। आर्यभट्ट (४७६ ई०) के अनुसार ६२८३२ परिधियुक्त (Circumference) और २०००० व्यासयुक्त (Diameter) वृत्त का निकटतम मान ३.१४१६ होगा –परिधिः/व्यास = ६२८३२/२००००= ३.१४१६[५४] आर्यभट्ट के अनुसार यही 'पाई' का आसन्नमान (निकटतममान) है। भास्कराचार्य द्वितीय (१११४ ई०) ने पाई का सूक्ष्ममान ३९२७/१२५०=३.१४१६ और स्थूलमान २२/७=३.१४ किया है।[५५] वस्तुतः गणित में पाई एक अपरिमित संख्या है, जिसका वास्तविक मान सर्वथा दुष्प्राप्य है। २२/७ का मान ३ अङ्क के पश्चात् दशमलव और उसके अनन्तर अवशिष्ट १/७ भिन्न का समाधान अन्तहीन ही है। आधुनिक गणितशास्त्रियों के लिए भी पाई का मान एक चुनौती बना हुआ है।

सूत्र ग्रन्थों में 'शुल्बसूत्र ग्रन्थ' (शुल्ब – यज्ञवेदी या कुण्ड को मापने के लिए प्रयुक्त होने वाली रज्जु या रस्सी) रेखागणित या ज्यामिति के प्रारम्भिक शास्त्र कहे जा सकते हैं। शुल्बसूत्र ग्रन्थों में निश्चित क्षेत्रफल में विभिन्न प्रकार की यज्ञवेदियों के निर्माण की विधि रेखागणित के अनुसार निर्दिष्ट है। यवन गणितज्ञ पाइथागोरस के प्रमेय के पूर्व ही बौधायन, आपस्तम्ब और कात्यायन शुल्बसूत्रों में "आयत का कर्ण निकालने का नियम" प्रतिपादित कर दिया गया था। पाइथागोरस के अनुसार एक समकोण त्रिभुज के कर्ण पर बना वर्ग अन्य दो भुजाओं पर बने वर्गों के योग के बराबर होता है। शुल्बसूत्रों में समचतुर्भुज (वर्ग) के कर्णरेखा के ऊपर निर्मित समचतुर्भुज (वर्ग) का क्षेत्रफल मूल समचतुर्भुज (वर्ग) के क्षेत्रफल का द्विगुण (दो गुना) होने का नियम इसप्रकार वर्णित है

समचतुरस्राक्ष्णया रज्जुर्द्विकरणी।[५६]

समचतुरस्रस्याक्ष्णया द्विस्तावर्ती भूमिं करोति।[५७]

---

५०. अथर्ववेद ८.९.२– यो अक्रन्दयत्सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः।

५१. यजुर्वेद ३३.७४– तिरश्चीनो बिततो रश्मिरेषामधःस्विदासीदुपरिस्विदासीत्।

५२. ऋग्वेद १.५२.५, १.१०५.१७

५३. द्विवेदी कपिल देव, वेदों में विज्ञान, पृ०सं०– २०३

५४. आर्यभट्टीयम्, गणितपादः, १०– चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम्।
अयुतद्वयविस्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः।।

५५.लीलावती, क्षेत्रव्यवहार, ९८

५६. कात्यायनशुल्बसूत्रम्, २.१२

५७. बौधायनशुल्बसूत्रम्, १.४५, आपस्तम्बशुल्बसूत्रम्,१.११

अन्यत्र भी कहा गया है कि दीर्घचतुर्भुज (आयत) का जो कर्ण (भुजा के विपरीत कोणों को मिलाने वाली रेखा) है, वह उस आयत की दोनों भुजाओं पर बने वर्गों के क्षेत्रफल के बराबर होता है- **दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णया रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यङ्गानी च यत् पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति।**[५८] इस प्रकार वैदिक गणिताचार्य प्रमेय की दृष्टि से पाइथागोरस से पूर्ववर्ती रहें हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक प्रकार की यज्ञवेदियों को निरूपित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यज्ञशाला के निर्माण में गार्हपत्याग्नि की वेदी वृत्ताकार, आह्वनीय अग्नि की वर्गाकार (चतुर्भुज) और दक्षिणाग्नि की अर्धवृत्ताकार या अर्धचन्द्राकार होती है।[५९]आकार-भेद के होने पर भी इन वेदियों का क्षेत्रफल समान होता था। इससे स्पष्ट है कि वैदिक आर्य समान क्षेत्रफल में विभिन्न आकारों की यज्ञवेदी का निर्माण करने में दक्ष थे।

उपसंहार- वैदिक उद्धरणों की वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचना करने से स्पष्ट है कि वैदिक गणितज्ञ अङ्कगणित और रेखागणित के कुशल प्रयोगकर्ता थे। वेदों में गणित प्रत्यक्ष रूप से "गणित शास्त्र" के रूप में नहीं है तथापि संख्या-ज्ञान, ज्यामिति, गोल-गणना और छन्द-शास्त्र के रूप में गणित विषयक रोचक तथ्य उपलब्ध होते हैं। वैदिक आचार्य सम-विषम संख्याओं, संकलन, व्यकलन, गुणन, भागहार, शून्य, दशमलव, पाई, चलनकलन, वृत्त, आयत, त्रिकोण, चतुर्भुज और प्रमेय जैसे गणितीय सिद्धान्तों से सम्यक रूपेण अवगत थे। वस्तुतः, यज्ञीय वेदियों की रचना और यज्ञानुष्ठान के लिए समुचित काल-गणना के द्वारा ही वैदिक गणित का उद्भव हुआ। यही परम्परा कालान्तर में शुल्बसूत्र, वेदाङ्ग, ज्योतिष, पिंगल छन्दःशास्त्र और तत्पश्चात आर्यभट्ट, भास्कराचार्य आदि की गणितीय परम्परा का आधार बनी। आधुनिक विज्ञान के सम्वर्धन में वेदस्थ गणितीय ज्ञान महत्त्वपूर्ण एवं उपादेय हैं।

-सहायक आचार्य,
संस्कृत-पालि-प्राकृत एवं प्राच्य भाषा विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज,
उत्तर प्रदेश

५८. कात्यायनशुल्बसूत्रम्, २.११; बौधायनशुल्बसूत्रम् १.४८; आपस्तम्बशुल्बसूत्रम् १.९

५९. शतपथ ब्राह्मण काण्ड ३ और काण्ड ७

कुमाऊँ के प्रमुख ऐतिहासिक काव्यकार-एक दृष्टि

-डॉ. लज्जा भट्ट

भारतवर्ष के विविध राज्यों में संस्कृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। इस भाषा ने भारतीय जन-जीवन तथा उसके साहित्य को प्राचीनकाल से ही अनुप्राणित किया, जिसका गहन प्रभाव भारतीय मानसिकता पर वर्तमान में भी परिलक्षित होता है। भारतीय जीवन को प्रतिबिंबित करने वाली संस्कृत काव्यधारा आर्यावर्त में सदैव से प्रवाहित होकर भारतीय जन-जीवन तथा उसके अनुपम साहित्य को सिंचित, पल्लवित तथा पुष्पित करती रही है। उत्तुङ्ग हिमालय के शिखरों से प्रवहणशील अगाध जलधारा वाली भगवती भागीरथी जिस प्रकार अनादिकाल से अपने अमृतमयरस से भारतभूमि को सस्य संपन्न तथा समृद्धिशाली बनाती आयी है, उसी प्रकार उत्तराखण्ड (जिसे देवभूमि भी कहा जाता है) में काव्य स्रोतस्विनी वैदिक काल से प्रवाहित होती रही है तथा उसने संस्कृत वाङ्मय को सदैव समुन्नत किया है। अनेक स्वनामधन्य महापुरुषों ने इस देवभूमि में जन्म लेकर अपनी सुस्पष्ट साहित्यिक लेखनी के कौशल से संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है, उनमें से कतिपय कुमाऊँ के साहित्यकारों ने अपनी इतिहासपरक रचनाओं के माध्यम से संस्कृत वाङ्मय में अभिवृद्धि की है। अत: उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र में विद्यमान कतिपय प्रमुख ऐतिहासिक रचनाकारों तथा उनकी रचनाओं का परिचय संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है-

१. राजारुद्रचन्द्रदेव- राजारुद्रचन्द्रदेव का शासनकाल सन् १५६८ से १५९७ ई. पर्यन्त माना जाता है।[१] इन्होंने लगभग २९ वर्षों तक कुमाऊँ अञ्चल पर राज्य किया। राजारुद्रचन्द्रदेव ने संस्कृत के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान दिया। यह स्वयं भी संस्कृतज्ञ तथा महान् साहित्यकार थे। इनके द्वारा रचित 'ययातिचरितम्' तथा 'उषारागोदया' नामक दो दृश्यकाव्य (नाटिकाएँ) इन्हें श्रेष्ठ नाटककार सिद्ध करते हैं। राजारुद्रचन्द्रदेवद्वारा रचित 'श्येनिकशास्त्रम्' ग्रन्थ प्राचीनकाल में प्रचलित आखेट कला पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। 'त्रैवर्णिकधर्मनिर्णय' नामक स्मृतितुल्य ग्रन्थ की रचना कर आपने संस्कृत साहित्य के भण्डार की अभिवृद्धि की है। 'ययातिचरितम्' एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है जो वर्तमान में अनुपलब्ध है।[२]

२.अनन्तदेव- चन्दशासन काल में महाराज बाजबहादुर चन्द के दरबारी कवि श्री अनन्तदेव मूलत: महाराष्ट्रीयकवि थे किन्तु इनकी सम्पूर्ण सारस्वत साधना कुमाऊँ अञ्चल के नरेश बाजबहादुरचन्द के आश्रय में ही हुई। बाजबहादुरचन्द के आश्रित कवि होने के कारण इन्हें बाजबहादुर का ही समकालीन माना जा सकता है। राजा बाजबहादुरचन्द का शासनकाल सन् १६३८ से १६७८ ई. तक माना जाता है, अत: अनन्तदेव का समय भी सत्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध के आसपास मानना चाहिए। राजा के सभा पण्डितों में इनका स्थान सर्वोपरि था, इन्हें राजकीय व्यय पर विद्याध्ययन हेतु काशी भी भेजा गया था।[३]

१- कुमाऊँ का इतिहास- बद्रीदत्त पाण्डेय, पृ. २६१

२- संस्कृत साहित्य में कूर्मांचल नरेश रूद्रदेव का योगदान, पृ. ६६-१०२

३- शोध लेखावली- डॉ. लज्जा पन्त भट्ट, पृ. ७७

धर्मशास्त्री के रूप में विख्यात अनन्तदेव ने संस्कृत के विविध क्षेत्रों में रचनाएँ की है। इनके द्वारा रचित लगभग १५ रचनाओं का विवरण प्राप्त होता है। यथा-स्मृतिकौस्तुभ, प्रायश्चितदीपिका, कालबिंदुनिर्णय, अग्निहोत्रप्रयोग, आग्रहायण प्रयोग, चातुर्मास्य प्रयोग, अन्त्येष्टि पद्धति, नक्षत्र सत्र प्रयोग, 'भगवन्नामकौमुदी' प्रकाश टीका, भगवद्भक्ति निर्णय, मथुरा सेतु, मीमांसा न्याय प्रकाश की टीका (भाट्टालङ्कार), वाक्यभेदवाद, देवता तत्व विचार, सिद्धांत तत्व आदि उक्त रचनाओं में इनके द्वारा प्रणीत 'राजधर्मकौस्तुभ' ग्रन्थ राजनीति का प्रसिद्ध निबंध ग्रन्थ है, जो चार खण्डों में विभक्त है। इन्हें भी दीधिति नाम से कहा गया है-

दीधितिः कौस्तुभस्यास्य भविष्यति चतुर्विधा।
प्रतिष्ठाविषयाऽत्राधात्प्रयोगपराऽपरा॥
राज्याभिषेकविषया तृतीयादीधितिस्ततः ।
प्रजापालन युद्धादिशिष्टार्था च ततः परा॥[४]

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में डॉ. राजवंश ने लिखा है-

"इस निबंध की रचना का मुख्य उद्देश्य राजाओं को उनके व्यक्तिगत एवं सामाजिक कर्त्तव्यों के विधिवत् पालन हेतु पथ-प्रदर्शन एवं निर्देशन देना है।"[५]

इस ग्रन्थ को अनन्तदेव ने अपने संरक्षक बाजबहादुर चन्द के आदेश पर लिखा था। इसका उन्होंने यत्र-तत्र वर्णन किया है-

बाजबहादुरचन्दभूपतेस्तस्यभूरियशसेप्रतन्यते।
राजधर्मविषयेऽत्रकौस्तुभेऽनेक पद्धतियुताथदीधितिः॥[६]

३.लक्ष्मीपति पाण्डेय- पं. पाण्डेय के कुलपुरुषश्री बल्लभपाण्डेय कन्नौज से कुमाऊँ क्षेत्र में आये थे। लक्ष्मीपति पाण्डेयसंभवतः चन्द शासनकाल में ज्ञानचन्द तथा जगतचन्द के दरबारी कवि थे। भाषा संगम के ये सुविख्यात कवि थे। कवि ने अपने काव्यों में तत्कालीन इतिहास को अत्यंत सूक्ष्म तथा यथार्थ रूप में चित्रित किया है, किन्तु अपने सम्बन्ध में मौन ही रहे हैं। 'अब्दुल्लाहचरित' की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि श्री जयदेव के विश्वरूप नामक एक पुत्र उत्पन्न हुए जिनके चार पुत्रों में पं. लक्ष्मीपति सबसे कनिष्ठ पुत्र थे-

विश्वविख्यातभूदेवजयदेवात्मजो महान्।
विश्वरूपः स्मृतोलोकेचत्वारस्तत्सुतास्मृता॥
तेषामाद्यश्रीनिवासोनाम तुल्यगुणान्वितः।
वीरेश्वरो द्वितीयस्तु विद्याविनयविक्रमी॥
विद्यालललालसम्पन्नोविद्यापतिरभूत्परः,
लक्ष्मीपतिश्चतुर्थस्तु तस्य या लिपिमालिका।
विदुषां चित्तकमले भ्रमरीवास्तु सा भृशम्॥ (अब्दुल्लाचरित की पुष्पिका)

४- राजधर्म कौस्तुभ- अनन्तदेव, श्लोक संख्या- १३-१४

५- डॉ. राजवंश सहाय, संस्कृत साहित्य कोश, पृ. ११

६- राज धर्म कौस्तुभ, पृ. ४

विविध प्रमाणों के आधार पर इनका समय लगभग १६६० ई. के पास माना जा सकता है। यह सुप्रसिद्ध पर्वतीय कवि विश्वेश्वर पाण्डेय के चाचा थे। विश्वरूप पाण्डेय के पुत्र लक्ष्मीपति अल्मोड़ा के पाटिया ग्राम के पाण्डेय ब्राह्मण थे। इनके ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि इन्होंने अपने चाचा लक्ष्मीधर (विश्वेश्वर के पिता) से शिक्षा ग्रहण की थी। इनकी रचनाओं में अरबी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओँ का प्रयोग इन्हें बहुभाषाविद् सिद्ध करता है। ये न्याय, धर्म, ज्योतिष, पुराण तथा राजनीति आदि विषयों के अच्छे ज्ञाता थे। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक विषयों से प्रेम होना इनकी दो रचनाओं से सिद्ध होता है।

कृतियाँ-

(क) फर्रुखसियरचरित- यह १८३७ श्लोकों का ऐतिहासिक प्रबंध काव्य है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९५९ ई. में प्राच्यवाणी कलकत्ता से हुआ। तथा इसका संपादन यतीन्द्र विमल चौधुरी ने किया था। इसका एक अन्य नाम 'नृपपतिगर्भवृत्तम्' भी है। मुगलबादशाहों में सम्राटफर्रुखसियर के चरित को आधार मानकर लिखे जाने के कारण इसका नाम 'फर्रुखसियरचरित' है। यह काव्य अनुष्टुप छन्द में, तीन भागों में विभक्त कर लिखा गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना विशुद्ध इतिहास की दृष्टि से। काव्य की भाषा-शैली अत्यन्त सरल तथा रोचक है। अरबी, उर्दू, फारसी आदि के शब्द भी यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए हैं। यथा-अगर्वि, असवार, उम्र, आलम, खत, खबर, बल्कि, बिना आदि। बीच-बीच में गीता, ज्योतिष तथा पुराण वचनों को उद्धृत करते हुए राजनैतिकवृतान्तों को स्पष्ट किया गया है। कहीं-कहीं यवनोक्तियों का प्रयोग भी काव्य में मिलता है।[७]

(ख) अब्दुल्लाहचरितम्- 'अब्दुल्लाहचरितम्' का संपादन भी यतीन्द्र विमल चौधुरी ने किया है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् १९४७ ई. प्राच्यवाणी कलकत्ता से ही हुआ था। अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रणीत यह काव्यग्रन्थ गद्य-पद्य मिश्रित एक ऐतिहासिक चम्पूकाव्य है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ १८०४ अनुच्छेदों में विभक्त है। इसमें भी अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है। इसमें गद्य की अपेक्षा पद्यों की बहुलता है। काव्य के प्रारम्भिक श्लोकों में भारतीय स्मृतियों, उपनिषदों, पुराणों तथा धर्माशास्त्रानुसार गृहस्थों एवं राजाओं के कल्याण के लिए नीति एवं आचार-व्यवहार की शिक्षा का वर्णन किया गया। काव्य में स्थान-स्थान पर रामायण, महाभारत, पञ्चतन्त्र, गीता, कुरान, याज्ञवल्क्यस्मृति तथा हितोपदेश की सूक्तियाँ भी उद्धृत की गई हैं। इस काव्य में अब्दुल्ला तथा उसके छोटे भाई हुसैन अली का राजाओं के नियोक्ताओं के रूप में वर्णन है। राज्यप्रतिष्ठापक अब्दुल्ला का वजीर के रूप में निष्पक्ष चित्रांकन करने के साथ ही सुसेन अली, मुहम्मदशाह के चरित्रों पर भी प्रकाश डाला गया है।

पं.लक्ष्मीपति पाण्डेय के उक्त दोनों काव्य बाणभट्ट, हर्षचरित, हम्मीरकाव्य, नवसाहसांकचरित, सुदर्शनचरित, पृथ्वीराजविजय, गउडवहो आदि ऐतिहासिक काव्यों की परंपरा में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।

यागीश्वर महात्म्य- यह रचना अप्रकाशित है। इसकी पांडुलिपि इण्डिया ऑफिस, लन्दन में सुरक्षित है। इसमें दारुकावनस्थलके मध्य में विद्यमान यागेश्वर के महात्म्य का वर्णन किया गया है, जो द्वादशज्योतिर्लिङ्ग के बीच मान्य है।

४.शिवानन्दपाण्डेय (शिव कवि)- शिव कवि कूर्माञ्चल के चन्द राजा कल्याणचन्द के शासन काल

७- कूर्मांचल में संस्कृत वाङ्मय का विकास, पृ. ३९

(सन् १७२९-१७४७) के राजपुरोहित कुल में उत्पन्न काश्यपगोत्रीय पाण्डेय ब्राह्मण थे। इनके पिता पं. विश्वरूप राजा बाजबहादुरचन्द के राजदरबार में (सन् १६३८-१७७८) प्रतिष्ठित थे-

आसीद्विख्यातकीर्तिर्नपमुकुटमणेर्बाजबहादुरस्य।
भक्तः पूज्यो नितान्तं कुलकमलरविविश्वरूपाभिधानः ॥
जातस्तस्यांगजन्मा कविकुमुदशशी श्री शिवानन्द शर्मा।
ब्रह्मानन्दाग्रजन्मा तदनुशिवकविस्तत्कृतिः सन्मुदेस्तात्॥[८]

कृतियाँ-

(क) कल्याणचन्द्रोदय- सात सर्गों तथा ५०७ श्लोकों में निबद्ध चन्द राजा कल्याणचन्द पर आधारित यह एक श्रेष्ठ तथा ऐतिहासिक काव्य है। राजा कल्याणचन्द के समय की विविध ऐतिहासिक घटनाओं का यथार्थ चित्रण इस काव्य में मिलता है। राजा कल्याणचन्द ने इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर इन्हें वटोषर ग्राम पारितोषिक रूप में प्रदान किया।

(ख) कूर्माञ्चल काव्य- शिवानन्दपाण्डेय के इस काव्य का उल्लेख मात्र ही मिलता है (स्मारिका-खण्ड-१, पृ.९८)। ग्रन्थ के नाम (कूर्माञ्चल काव्य) से प्रतीत होता है कि इसमें कूर्माञ्चल का भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक वर्णन पद्यमय होगा।

५.पद्मशास्त्री- पद्मशास्त्रीपिथौरागढ़ जिले के अस्कोट नामक ग्राम के निवासी हैं। इनका जन्म १७नवम्बर सन् १९३५ ई. में हुआ। इनकी माता का नाम श्रीमती इन्द्रा देवी तथा पिता का नाम श्री बद्रीदत्त ओझा था। अपने दादा तथा नाना के परिवार के अच्छे संस्कारों का पूर्ण प्रभाव पद्मशास्त्री पर पड़ा। इन्होंने प्रथमा की परीक्षा हरियाणा राज्य के समीप स्थित जगाधारी के सनातन धर्म संस्कृत कॉलेज से अपने नाना के पास रहकर उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् मूलरूप से चम्पावत के निवासी, सनातन धर्म संस्कृत महाविद्यालय व्यावर के प्राचार्य पं. रघुवर दत्त जोशी की प्रेरणा से इन्होंने पूर्वमध्यमा, उत्तरमध्यमा, शास्त्री एव आचार्य की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। सन् १९५७ में 'साहित्यरत्न' की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् राजकीय जैन गुरुकुल हायरसैकेंडरी में अध्यापन कार्य करते हुए जयपुर विश्वविद्यालय से बी.एड. परीक्षा उत्तीर्ण की, आयुर्वेदाचार्य, काव्यतीर्थ आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके इसी संस्कृत भाषा का डिप्लोमा भी लिया।

कृतियाँ-

(क) लेनिनामृतम्- यह पन्द्रह सर्गों में निबद्ध वीररस से परिपूर्ण ऐतिहासिक महाकाव्य है। इस काव्य के नायक लेनिन हैं। इसमें जारशासन के विरुद्ध रूसी जनता की पीड़ा तथा उससे मुक्ति पाने का प्रेरक कथानक है, जो विश्व के सभी मानवों को स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाने में समर्थ है।

(ख) स्वराज्यम्- यह वीररस से युक्त पाँच सर्गों का खण्डकाव्य है इसमें मुगलों के आक्रमण, उनके शासन,

८- कल्याणचंद- सप्तम सर्ग, अन्तिम श्लोक

अंग्रेजों से भारत की मुक्ति, देश-विभाजन, चीन का आक्रमण आदि घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। अनुप्रास का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

विगता नु विहायसागता क्व गतारः सम्प्रति नोगता गताः।
कुगता नुगता नवागता न गतास्ते कथमत्र वागताः॥[९]

(ग) बांग्लादेश विजयम्- यह एक अंक का व्यायोग नामक ऐतिहासिक रूपक है इसमें पाकिस्तानियों द्वारा शेख मुजीब के अपहरण तथा बांग्लादेश पर आक्रमण आदि घटनाओं का वर्णन किया गया है। इंदिरा गाँधी द्वारा शत्रुओं को परास्त करने तथा लोकतंत्र प्रणाली लागू करने का वर्णन है।

(घ) मदीयासोवियत यात्रा- सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार समिति तथा नोवस्ती प्रेस एजेन्सी के निमन्त्रण पर पद्मशास्त्रीजी ने पन्द्रह दिन की अपनी सोवियत यात्रा का वर्णन इस कृति में किया है। मास्को, ताशकन्द, उजबेकिस्तान आदि स्थानों का सुन्दर चित्रण एवं सोवियत की राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक नीति पर भी प्रकाश डाला है।

(ङ) लोकतन्त्रविजय- यह एक अंक का व्यायोग नामक रूपक है इसमें इंदिरा गाँधी द्वारा बताये गए बीस सूत्री कार्यक्रमों का वर्णन करने के साथ-ही-साथ रूस तथा भारत की मैत्री पर प्रकाश डाला गया है।

उक्त के अतिरिक्त सिनेमाशतकम् पद्यपञ्चतन्त्रम्, विश्वकथा शतकम् तथा चायशतकम् इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।[१०]

साहित्य के क्षेत्र में अपने योगदान के लिए कवि पद्मशास्त्री को विविध पुरस्कार प्राप्त हुए, जिनमें सन् १९६० ई. अलिख भारतीय विद्वत्परिषद् द्वारा विद्याभूषण की उपाधि राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा 'स्वराज्यम्' खण्डकाव्य के लिए रु.५००/-, स्वर्णपदक एवं प्रशस्तिपत्र, 'लेनिनामृतम्'के लिए उत्तर प्रदेश शासन द्वारा रु. २५००/- का विशिष्ट पुरस्कार प्रमुख है।

६.डॉ. मथुरादत्तपाण्डेय- कुमाऊँ में अल्मोड़ा जिले के कुमाल्ट ग्राम निवासी डॉ. मथुरादत्तपाण्डेय का संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में विशिष्ट योगदान है। शास्त्री, एम.ए., पी.एच.डी. उपाधि प्राप्त डॉ. पाण्डेय ने पंजाब सरकार के उच्च विभाग में अध्यापन करते हुए अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् एक वर्ष विश्वेश्वरानंदवैदिक अनुसन्धान संस्थान होशियारपुर में संयुक्त निदेशक के पद पर कार्य किया। सन् १९६१ से १९६५ ई. तक कोलम्बोयोजनाधीन भारत सरकार की ओर से नियुक्त होकर विश्वविद्यालय, काठमांडू नेपाल में अध्यापन कार्य किया। महर्षि महेश योगी की ओर से आमंत्रित होकर हॉलेण्ड में तीन महीने तक संस्कृत शिक्षण कार्य में रत रहे।

कृतियाँ- डॉ. पाण्डेय के पल्लवपंचकम्, द्यावापृथिवीयम् तथा कारगिल (कालगिरीः) शीर्षांकित तीन संस्कृत एकांकी संग्रह प्रकाशित हैं।

१.पल्लवपञ्चकम्- इस एकांकी संग्रह का डॉ. पाण्डेय ने प्रथम बार स्वयं सन् १९८१ ई. में प्रकाशन किया। इस संग्रह में पाँच एकांकी हैं-

---

९- स्वराज्यम्- पद्मशास्त्री, ३/७५

१०- चायशतकम्- श्रीपद्मशास्त्री, आवरण पृ. १४

(क) कालिदासकाव्यसम्भवम्- इस एकांकी का आधार महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूतम्' नामक खण्डकाव्य है। इसमें यक्ष के स्थान पर कालिदास, यक्षिणी के स्थान पर मालिनी, मेघ के स्थान पर मेघराज तथा रामगिरि के स्थान पर चित्रकूट आदि पात्रों एवं स्थानों का वर्णन कर रूपककार पाण्डेय ने अपने रूपक को मौलिकता प्रदान की है।

(ख)नारदमोहिनीयम् - यह एकांकी इतिहास-पुराणों में विख्यात नारदमोह की कथा का सुन्दर नाट्य रूपान्तर है, जिसमें भगवान् विष्णु द्वारा नारद के कामविजय से सम्बद्ध अभियान को नष्ट करने का वर्णन है।

(ग) राजदूतम्- इस एकांकी में नेपाल में भारत के राजदूत श्री हरीश्वरदयाल को श्रद्धाञ्जलि दी गई है। इसकी कथा सन् १९६४ ई. की उस दु:खद घटना पर आधारित है, जब चीन ने भारत से विश्वासघात किया था। भगवान् शंकर की प्रेरणा से हरीश्वरदयाल द्वारा अपने प्राणों के उत्सर्ग के चित्रण से देशभक्तिभाव की सुन्दर अभिव्यक्ति की गई है।

(घ) शुद्धाज्यम्- इस एकांकी में वाणिज्य एवं पारिवारिक जीवन में तथा इनके साधनों में नैतिकता के अभाव का चित्रण किया गया है, पर्वतीय परिवारों में घृतसंक्रान्ति (भाद्रपदमास) की बड़ी मान्यता है, इस सांस्कृतिक पक्ष को भी इस कृति में प्रकट किया गया है।

(ङ) कामोऽस्मि- काम का मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस रूपक में कवि ने समलैंगिकता को भी प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त यह रूपक यह भी बताता है कि वासना प्रेम में होती हैं किन्तु वासना ही प्रेम नहीं होती।

२.द्यावापृथिवीयम्-इस एकांकी संग्रह का प्रकाशन सन् १९९५ में कवि द्वारा पंचकूल्या, हरियाणा से स्वयं ही किया गया। इस संग्रह में पाँच एकांकी हैं, जो स्वर्ग तथा पृथिवी के मध्य समन्वय के प्रतीक है एवं वैदिक तथा पौराणिक आख्यानों पर आधारित हैं।

(क) ऐलोर्वशीयम्- पुरूरवा उर्वशी का आख्यान पद्यात्मक एकांकी के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें मुख्यत: अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

(ख) देवोयातिभुवनानि पश्यन्- ऋग्वेद की ऋचाओं पर आधारित सूर्य-सरण्यू का विवाह, सूर्य-छाया का विवाह, सरण्यू से यम-यमी, अश्विनी कुमार, छाया से शनि आदि का जन्म इत्यादि घटनाओं के माध्यम से विषम विवाह की समस्या पर भी प्रकाश डाला गया है।

(ग) सामयिकी- यह एकांकी ऋग्वेद के दशम मण्डल के यम-यमी संवाद पर आधारित है। इसमें भाई-बहिन के विवाह को निषिद्ध बताते हुए भाई यम के शाप से यमी के यमुना बन जाने का भी वर्णन है।

(घ) उत्कोच- ऋग्वेद के सरमा-पणि संवाद पर आधारित रूपक में उत्कोच नामक सामाजिक बुराई को नष्ट करने का वर्णन है। बृहस्पति की चुराई हुई गायों को खोजने के लिए इन्द्र सरमा नाम कुतिया को नियुक्त करते हैं। उसे ज्ञात होता है कि पणिजनों द्वारा इस दुष्कृत्य को किया गया है। इस रूपक में पणिगणों द्वारा सरमा को उत्कोच दान, क्षमायाचनापूर्वक गायों को छोड़ना, युद्ध, उत्कोच (घूस) लेने के कारण सरमा का दोनों ओर से दण्डित होना तथा पणि एवं देवताओं में सन्धि होने की घटनाएँ वर्णित हैं।

(ङ) प्रसूनं मदीयं त्वदीयं- विष्णुपुराण पर आधारित इस एकांकी कथा में राजा ज्यामधयुद्ध में शत्रु पर विजय प्राप्त करके वहाँ की राजकुमारी को लाता है तथा पत्नी को परामर्श देता है कि उस राजकुमारी से हमारे होने वाले पुत्र का विवाह किया जाना चाहिए। रानी इस बात का विरोध करती है तो राजा कहता है कि जैसे स्त्री का विवाह स्वयं से दुगुनी आयु के पुरुष से हो सकता है उसी प्रकार पुरुष का विवाह भी स्वयं से दुगुनी आयु वाली स्त्री से हो सकता है।

३.कालागिरी:(कारगिल) - डॉ. पाण्डेय द्वारा इस एकांकी संग्रह का प्रकाशन सन् २००० ई. में किया गया। इसमें पाँच एकांकियों का संग्रह हैं।

(क) अहोसापत्न्यं कवितावनितयो: - पाँच दृश्यों से युक्त इस एकांकी में रूपककार ने समाज में उन लोगों को सावधान किया है, जो वास्तविकता से दूर रहते हैं। शीतल नामक कवि कविता कामिनी में ही रत होकर गार्हस्थ्य धर्म की उपेक्षा करता है तो दूसरा परिमल अपनी पत्नी के रूप पर ही आसक्त है, उसके अन्त:करण की उपेक्षा करता है। नाट्यशिल्प पाश्चात्य नाट्यशिल्प से प्रभावित है।

(ख) प्रायश्चित्तम- यह रूपक सन् १९८५ ई. के पूर्व पंजाब राज्य में खालसा राज्य की तथाकथित स्थापना के लिए चलाये गये आतंकवादियों के सशस्त्र आन्दोलन पर आधारित है। जनप्रीतसिंह नामक एक आतंकवादी अपने साथी आतंकवादियों-अमरसिंह तथा जयसिंह के द्वारा मारे जाते हुए हिन्दू परिवार की रक्षा करना चाहता है तथा अपनी बाल्यकाल की प्रेमिका लता द्वारा धिक्कारने पर आतंकवाद का मार्ग छोड़ना चाहता है। अन्त में हिन्दू परिवार की रक्षा करते हुए आतंकवादी जयसिंह को गोली मार देता है तथा स्वयं भी अमरसिंह की गोली का शिकार बन जाता है। रूपक के माध्यम से कवि ने बताया है कि बेरोजगार युवकों को दुष्ट लोग किस प्रकार आतंकवाद की ओर उन्मुख कर देते हैं।

(ग) अक्षि परिचय:- रंगमंच पर अभिनय योग्य इस रूपक में नेत्र प्रत्यारोपण की अभिनव शिक्षा पद्धति का चित्रण किया गया है। सोमदत्त नामक युवा दुर्घटनाग्रस्त होकर हर्षवर्धन नामक कार चालक के नेत्रों से ही दुनियाँ देता है। इसी चिकित्सालय में उसकी पत्नी शिरोवेदना की चिकित्सा के लिए भर्ती है तथा सोमदत्त को बड़े प्रेम से देखती है, फलस्वरूप सोमदत्त की पत्नी रूष्ट हो जाती है। चिकित्सकों के समझाने पर अपने पति की सुचिकित्सा हेतु वह ईर्ष्याभाव छोड़ देती है। बाद में चोट लगने पर सोमदत्त की अपनी याददाश्त वापस आ जाती है तथा वह पुन: अपनी पत्नी से सामान्य रूप से प्रेम करता है तथा उसके परिवार वाले हर्षवर्धन की पत्नी कीर्ति को भी अपने घर में आश्रय दे देते हैं।

(घ) जीवन्मृत: - इस रूपक में भ्रष्टाचार से युक्त इस युग में जीवित व्यक्ति भी शत्रुओं के द्वारा मृतक के रूप में घोषित कर दिया जाता है। न्यायालय में इन्हीं त्रुटियों की भाँति अज्ञानी भी संस्कृत साहित्य को यथार्थ जीवन से विमुख मानकर प्रलाप करते रहते हैं।

(ङ) कालगिरिः– सन् १९९९ ई. में ग्रीष्म ऋतु में कश्मीर राज्य के उत्तर में स्थित कारगिल नामक पर्वतीय क्षेत्र में पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा छलपूर्वक आक्रमण का जो प्रयास किया गया तथा उसका जो परिणाम हुआ उसे सम्पूर्ण संसार भारत पाक युद्ध के रूप में जानता है। इसी घटनाचक्र को लेकर रूपक लिखा गया है। हिमाच्छादित होने के कारण शीताधिक्य से महती संख्या में योद्धाओं को काल के ग्रास में डालने के कारण इस रूपक का नाम 'कालगिरि:' रखा गया। प्राय: नेताओं की स्वार्थलिप्सा का फल सैनिकों तथा नागरिकों द्वारा अनुभव किया जाता है। इसमें पाकिस्तान के सैनिकों की क्रूरता, स्वाभाविक द्वेष तथा भारतीयों में कृपालुता तथा उदारता का चित्रण किया गया है। युद्ध न हो, इस दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई। इस रूपक को दूरदर्शन की दृष्टि से लिखा गया है।

–सह-आचार्या,
संस्कृत विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल (उत्तराखण्ड)
पिन–२६३००१

अथर्ववेद में वृक्ष- वनस्पतियों के उपकारक तत्त्व विमर्श

-डॉ ज्योति प्रसाद गैरोला

वृक्ष-वनस्पतियों के माता-पिता- अथर्ववेद में वृक्ष-वनस्पतियों के माता-पिता का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि मेघ (पर्जन्य) इनका पिता और भूमि इनकी माता है। पर्जन्य के विषय में कहा है कि यह 'भूरिधायस्' अर्थात् अनेक प्रकार से पोषक है और 'शतवृष्ण्य' अर्थात् सैकड़ों शक्ति से युक्त है। इसका अभिप्राय है कि पर्जन्य (मेघ) वृक्ष आदि का पिता के तुल्य पालक है और इन्हें अनेक प्रकार की शक्ति देता है। पृथिवी को माता कहते हुए उसे 'भूरिवर्पस्' अर्थात् अनेक रूपों वाली कहा है। पृथिवी से नाना प्रकार के वृक्ष, वनस्पति और ओषधियाँ निकलती हैं। मेघ पिता के तुल्य वृक्षादि का पालन करते हैं और पृथिवी माता के तुल्य उनका संवर्धन, पोषण और रक्षण करती है।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥ [१]

वृक्ष-वनस्पतियों के पाँच पिता- अथर्ववेद में वृक्षादि के पाँच पिताओं का उल्लेख है। ये हैं: १. पर्जन्य (मेघ), २. मित्र (प्राणवायु. Oxygen) ३. वरुण (जल, Hydrogen). ४. चन्द्र (चन्द्रमा), ५. सूर्य। इन पाँचों को 'शतवृष्ण्य' अर्थात् सैकड़ों शक्ति से युक्त कहा गया है। पर्जन्य वर्षों के द्वारा ओषधियों को जीवन प्रदान करता है। मित्र (आक्सीजन, Oxygen) वृक्षों का जीवन है। वरुण (जल) से ही वृक्षों को शक्ति प्राप्त होती है। चन्द्रमा ओषधियों को शीतलता और शक्ति प्रदान करता है। सूर्य को ऊर्जा से ही वृक्षों आदि में प्रकाश-संश्लेषण (Photo- synthesis) की प्रक्रिया होती है। इस प्रकार ये पाँचों वृक्ष-वनस्पतियों के पिता हैं।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यम्, मित्रम्, वरुणम्, चन्द्रम्, सूर्यं शतवृष्ण्यम् । [२]

पृथिवी :- वृक्ष-वनस्पतियों के आधार के रूप में पृथ्वी का बहुत गुणगान मिलता है। पृथिवी ओषधियों की माता है और वह सभी प्रकार के वृक्ष-वनस्पतियों को जन्म देती है। पृथिवी संसार की पालक है। वह ओषधियों और वृक्ष-वनस्पतियों का आधार है। वृक्ष-वनस्पतियों का पिता द्युलोक (पर्जन्य) है, पृथिवी माता है और समुद्र, वर्षा का अधार होने से, ओषधियों का मूल (Root) है।

(क) विश्वस्वं मातरमोषधीनाम्। [३]
(ख) भुवनस्य गोपा, वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम्। [४]
(ग) यासां द्यौः पिता, पृथिवी माता, समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव। [५]

---

१. अथ.१.२.१
२. अथ.१.३.१.से ५
३. अथ.१२.१.१७
४. अथ.१२.१.५७
५. अथ.३.२३.६

पर्जन्य (मेघ), जल और मरुत् (वायु) अथर्ववेद के एक सूक्त में वर्षा को सृष्टि का प्राण बताया गया है और इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। वर्षा से ही ओषधियों (वृक्ष-वनस्पतियाँ) उत्पन्न होती है और उनको जीवन-शक्ति प्राप्त होती है। वर्षा को ओषधियों का प्राणदाता और रक्षक बताया गया है। जल से वृक्ष- वनस्पतियों की वृद्धि होती है। अथर्ववेद के एक सूक्त में मरुत् (वायु) देवों का गुणगान है। इसमें कहा गया है कि मरुत् देवगण ही समुद्र से जल को भाप के रूप में ऊपर ले जाते है, मेघों की रचना करते हैं और जल की वर्षा करते हैं। ये वृक्ष-वनस्पतियों को रस प्रदान करते हैं और उनमें जीवन-संचार करते हैं।

(क) यदा प्राणो अभ्यवर्षीत्, ओषधयः प्र जायन्ते।[६]

(ख) य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु ।[७]

सोम (चन्द्रमा) - वेदों में सोम को ओषधियों का राजा बताया गया है।' सोम को वनस्पतियों का पालक और पोषक कहा गया है। वह वनस्पतियों को हरियाली और मधुरता देता है। सोम के लिए कहा गया है कि वह शक्ति, बल, तीव्र गति, सुन्दरता और कान्ति देता है। सोम के लिए एक महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि यह रस के रूप में वृक्ष-वनस्पतियों के केन्द्र (Nucleus) में रहता है।

सीदन् श्येनो न योनिमा ।[८]

सूर्य :- वृक्ष-वनस्पतियों पर सूर्य का बहुत प्रभाव पड़ता है। ऋग्वेद के एक मंत्र में सूर्य की किरणों से प्रकाश संश्लेषण-प्रक्रिया (Photo-synthesis) का संकेत मिलता है। मंत्र का कथन है कि वृक्ष सूर्य की सात रंग की किरणों से शक्तिप्रद ऊर्जा प्राप्त करते हैं। अन्य मंत्र में कहा गया है कि सूर्य के कारण ही सभी प्रकार के वृक्ष-वनस्पतियों में पाक क्रिया होती है। इसी से सब फल और अन्न आदि पकते हैं। सूर्य ही फल-फूल वाली सभी ओषधियों को शक्ति प्रदान करता है। सूर्य हो अपनी ऊष्मा से फलों आदि में मधुरता उत्पन्न करता है और फल-फूल की वृद्धि करता है।

(क) अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं सप्तपदीमरिः ।
सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ।।[९]

(ख) स ओषधीः पचति विश्वरूपाः ।।[१०]

(ग) देवस्त्वा सविता मध्वाऽनक्तु
सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः।[११]

अग्नि - अनेक मंत्रों में वर्णन किया गया है कि वृक्ष-वनस्पतियों के अन्दर अग्नि विद्यमान है। उसके कारण ही वृक्षों आदि की वृद्धि होती है। उसी से फल-फूल पकते हैं। अग्नि के परिपाक से ही फलों में मधुरता आती है। ऋग्वेद का कथन है कि वृक्ष-वनस्पति अग्नि को अपने गर्भ में धारण करते हैं।' अग्नि वनस्पतियों का स्वामी है।

६. अथ.११.४.१७

७. अथ.४.२७.२

८. ऋग्.९.६५.१९

९. ऋग्. ८.७२.१६.

१०. ऋग्. १०.८८.१०

११. यजु.६.२

वृक्ष-वनस्पतियों और लताओं में फल-फूल आदि की वृद्धि अग्नि के कारण ही होती है। जो अग्नि द्यावापृथिवी में सर्वत्र व्याप्त है, वही ओषधियों में भी विद्यमान है। वह अमर (अमर्त्य) और चेतन अग्नि वृक्ष-वनस्पतियों में विद्यमान है।' उस अग्नि ने ही ओषधियों में चेतना दी है और विविध रूप वाले तथा सौभाग्यशाली वनों को जन्म दिया है। अग्नि के द्वारा सभी वनस्पतियों में पाकप्रक्रिया होती है और फल आदि पकते हैं। अथर्ववेद का कथन है कि अग्नि के कारण ही ओषधियों और फल-फूल में मधुरता (मिठास) आती है।

येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् । [१२]

वृक्षों पर, कलम लगाना (ळतंजिपदह) अनेक मंत्रों में वृक्षों पर कलम लगाने का उल्ले है। नर वृक्ष पर नर वृक्ष की कलम लगाना और नारी (स्त्रीलिंग) वृक्ष पर नर (पुं०) वृक्ष की कलम लगाना, दोनो प्रकार के प्रयोगों का उल्ले है। १. दिर (खैर) के पेड़ पर अश्वत्थ (पीपल) का पेड़ लगाना। २. शमी वृक्ष (स्त्री0) पर अश्वत्थ (पीपल, पुं०) को लगाना। ३. मदावती (स्त्री०) वृक्ष पर विहल्ह पुं०) की कलम लगाकर आबयु वृक्ष को तैयार करना ।

(क) पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि । [१३]

(ख) शमीमश्वत्थ आरुढस्तत्र पुंसुवनं कृतम् । [१४]

(ग) विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता। [१५]

पौधों में लिंगभेद- उपर्युक्त तीन मंत्रों में पुरुष, पिता, माता एवं पुंसवन (पुंलिंग वृक्ष को जन्म देना) शब्दों से स्पष्ट है कि वृक्षों में भी नर और नारी होते हैं तथा लिंगभेद होता है। शमी और अश्वत्थ का संयोग तथा मदावती और विहल्ह का संयोग पुरुष और स्त्री के संयोग के तुल्य है। उससे नए वृक्ष का जन्म होता है ।

हारीतसंहिता (शरीरस्थान[१६]) में पौधों के लिंगभेद और स्त्री-पुरुष-समागम की अनिवार्यता का स्पष्ट निर्देश है।

संयोगेन विना प्राज्ञ कथं गर्भो न जायते ।
संयोगेन विना पुष्पं फलं वा न कथं भवेत् ॥
तन्त्र स्त्री-पुरुष-गुणा वर्तन्ते समयोगतः ।
आम्रपुष्पं फलं तद्वद् बीजं शुक्रमयं विदुः ॥ [१७]

चरकसंहिता के 'कल्पस्थान' प्रकरण में वत्सक पौधे के संबन्ध में स्त्री-पुरुष का भेद किया गया है। १. जिस वत्सक के फल बड़े हों, फूल सफेद हों, पत्ते चिकने हों, वह नर-वत्सक है। २. जिसके फूल श्याम या अरुण हों तथा फल और डंठल छोटे हों, वह नारी-वत्सक है।

बृहत्फलः श्वेतपुष्पः, स्निग्धपत्रः पुमान् भवेत् ।
श्यामा चारुणपुष्पा स्त्री फलवृन्तैस्तथाऽणुभिः ॥ [१८]

---

१२. अथ.४.२३.६

१३. अथ.३.६.१

१४. अथ.६.११.१

१५. अथ.६.१६.२

१६. अथ.१

१७. हारीता. शरीर. १

१८. चरक. कल्प.५.५

वृक्ष आक्सीजन (Oxygen) देते हैं ऋग्वेद और सामवेद का कथन है कि वृक्षों के अन्दर अग्नि (Oxygen) है। वृक्ष अपनी जड़ से जो जल खींचते हैं, उस जल से यह अग्नि (Oxygen) तैयार होती है। सभी वृक्ष, लता और वनस्पतियाँ इस गर्भस्थ अग्नि (Oxygen) को बाहर फेंकती है। इस मंत्र में प्रकाश- संश्लेषण-प्रक्रिया (Photosynthesis) का संकेतमात्र है। इस मंत्र में आक्सीजन को 'समानवायु' नाम दिया गया है। अश्वत्थ (पोपल) में आक्सीजन की मात्रा बहुत अधिक है, अतः उसे 'देवसदन' अर्थात् देवों का निवास या ऊर्जा का भंडार कहा गया है।

(क) तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं,
तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित् समानं वनिनश्च वीरुधो अन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥[१९]

(ख) अश्वत्थो देवसदनः ।[२०]

अन्नों में प्राण और अपान तत्त्व वेदों में अन्नों का विभाजन प्राण और अपान तत्त्वों के आधार पर किया गया है। जिनमें आग्नेय तत्त्व (Oxygen) अधिक है, उन्हें प्राण-शक्तियुक्त या प्राणबहुल कहा है तथा जिनमें सोमीय तत्त्व (Hydrogen) अधिक है, उन्हें अपानशक्तियुक्त कहा है। प्राणशक्तियुक्त अन्नों में जौ, गेहूँ आदि की गणना है। ये शारीरिक शक्ति और पौष्टिकता प्रदान करते हैं। जिनमें सोमीयशक्ति अधिक होती है, उनमें व्रीहि (चावल) आदि की गणना है। ये अन्न कोमलता, बौद्धिक शक्ति और मृदुता आदि प्रदान करते हैं। वेदों में विटामिन (Vitamin) के स्थान पर प्राण-अपान नाम दिए गए है। जी-चावल आदि का ओषधि के रूप में प्रयोग होता था। अतः इन्हें भेषज (ओषधि, दवा) कहा गया है। अन्न और अन्नाद्य (अनाज) को सदा स्वच्छ और कीटाणुओं से रहित रखने का भी उपदेश दिया गया है। अन्न को अविष या निर्विष अर्थात् दूषित कीटाणुओं से बचाकर रखो ।

(क) यवे ह प्राण आहितोऽपानो ब्रीहिरुच्यते ।[२१]

(ख) व्रीहिर्यवश्च भेषजौ ।[२२]

(ग) यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ।[२३]

वृक्षों की विविध मणियाँ- अथर्ववेद में अनेक वृक्षों की मणियों का वर्णन है। हिन्दी में इनको मनका कहते हैं। किसी वृक्ष के शाखा आदि के छोटे भाग करने पर इन्हें मनका कहते हैं। इनको गोल दाने के रूप में बनाकर बीच में छेद करके माला की तरह बना लिया जाता है। इसे गले में या हाथ आदि पर बाँधा या पहना जाता है। मणि-बन्धन के बहुत अधिक लाभों का वर्णन है। इसके पीछे यह भावना छिपी हुई है कि प्रत्येक वृक्ष में कुछ विशेष ओषधीय गुण होते हैं। वे गुण उसको शाखा और पत्तों आदि में भी होते हैं। उन वृक्षों के फल आदि से जो

१९. ऋग्.१०.११.६. साम.१८२४
२०. अथ. ६.९५.१
२१. अथ.११.४.१३
२२. अथ.८.७.२०
२३. अथ. ८.२.१९

लाभ होते हैं, वे उसकी शाखा या मनका धारण करने से भी होते हैं। इनसे अनेक रोग दूर किए जा सकतेहैं और दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है।

अथर्ववेद में वर्णित कुछ महत्त्वपूर्ण मणियाँ- १. जंगिड मणि (अर्जुन वृक्ष की बनी मणि, अथ. २.४)। २. वरण मणि (वरुण वृक्ष की बनी मणि, अ० १०.३)। ३. दर्भ मणि (कुशा से बनाई मणि, अ० १९.२८ से ३०) ४. औदुम्बर मणि (गूलर से बनाई मणि, अ० १९.३१)। ५. शतवार मणि (शतावर से बनी मणि, अ० १९.३६)। ६. पर्णमणि (पलाश या ढाक से बनी मणि, अ० ३.५)।

वृक्षों में चेतनतत्त्व - वृक्षों में जीवनीशक्ति, चेतनता या जीव है या नहीं, यह अत्यन्त विवादास्पद विषय है। कुछ ग्रन्थकार वृक्षों में जीव मानते हैं, कुछ नहीं। न मानने वालों का कथन है कि वृक्षों में रासायनिक प्रक्रिया से सब काम होते हैं, उनमें जीव नहीं है। अन्य विद्वान् वृक्षों में जीव मानते हैं और उनमें मनुष्य के तुल्य प्राण-संचार, रोना-हँसना, सोना-जागना आदि मानते हैं। वेदों में प्राप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है :-

अथर्ववेद का कथन है कि महत् ब्रह्म (आत्मा) की सत्ता के कारण ही वीरुध् (वृक्ष-वनस्पतियाँ) साँस लेते हैं। एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि वृक्ष खड़े-खड़े सोते हैं।

(क) महद् ब्रह्म.. येन प्राणन्ति वीरुधः ।[२४]

(ख) अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नाः ।[२५]

अथर्ववेद में ही कहा गया है कि जीव मरने के बाद ओषधियों (वृक्ष- वनस्पतियों) के रूप में भी पुनर्जन्म प्राप्त करता है। मंत्र का अर्थ है कि हे मृत आत्मा, तुम ओषधियों में अपने शरीर से प्रतिष्ठित होना। एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि वृक्षों में चेतनता है, अतः उनके घाव साल भर में भर जाते हैं।

(क) ओषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः।[२६]

(ख) तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति ।[२७]

ऋग्वेद का कथन है कि वह अमर अग्नि (आत्मा) ओषधियों (वृक्ष- वनस्पतियों) में प्रकाशित हो रहा है।

चेतति त्मन् अमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ।[२८]

बृहदारण्यक उपनिषद् (३.९.२८) में मनुष्य और वृक्ष की समानता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पति भी मनुष्य के समान है। पुरुष के लोम (बाल) हैं, वृक्षों के पत्ते हैं, दोनों के शरीर पर त्वचा है। त्वचा कटने पर खून निकलता है, वृक्ष की भी त्वचा से रस निकलता है। मनुष्य के शरीर में माँस है, वृक्ष में शर्करा (खाँड)। मानवशरीर में हड्डी है, वृक्ष में लकड़ी। दोनों के घाव भर जाते हैं।

यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा।
तस्य लोमानि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिका बहिः ।[२९]

---

२४. अथ.१.२.२.१

२५. अथ.६.४४.१

२६. अथ.१८.२.७

२७. अथ.८.१०.१८

२८. ऋग्.६.१२.३

२९. बृहदा.उप.३.९.२८.

महाभारत के शान्तिपर्व (अध्याय १८४) में बहुत विस्तार से इस विषय का वर्णन है कि वृक्षों में पाँच महाभूत किस प्रकार से रहते हैं। वे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध को किस प्रकार ग्रहण करते हैं। भरद्वाज ने प्रश्न किया है और भृगु ने उसका उत्तर दिया है। वृक्ष-वनस्पति भूमि से कैसे भोजन ग्रहण करते हैं, उसे कैसे शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाते हैं और कैसे उसका पाचन होता है। इसका उत्तर दिया है कि जैसे मनुष्य कमलनाल को मुख में लगाकर पानी पी सकता है, उसी प्रकार पौधे वायु की सहायता से अपनी जड़ों के द्वारा पानी पीते हैं।

वृक्षों में रस का संचार (Circulation) होता है, इसका संकेत वैशेषिक दर्शन में मिलता है 'वृक्षाभिसर्पणम्0 (५.२.७) भागवत पुराण में भी वृक्षों में जल का नीचे से ऊपर जाना वर्णित है **'उत्स्रोतसस्तमः प्राया अन्तः स्पर्शा विशेषिणः'** (३.१०.२०) **'षड्दर्शनसमुच्चय'** पर गुणरत्न (१३५० ई) की जो टीका है, उसमें मनुष्य और वनस्पति के जीवन का सादृश्य दिखाया गया है। जैसे मनुष्य-शरीर का पोषण माँ के दूध, भोजन आदि से होता है, उसी प्रकार वनस्पतियों का पोषण भूमि के जल, आहार आदि से होता है। जिस प्रकार उचित और अनुचित आहार से मनुष्य-

यथा मनुष्यशरीरं स्तनक्षीरव्यंजन...........तथा वनस्पतिशरीरमपि।

उसने ऐसे पौधों की सूची भी दी है, जो सोते और जागते हैं। शरीर की वृद्धि या हानि होती है, उसी प्रकार वनस्पति शरीर की भी। गुणरत्न ने लज्जावन्ती (छुई मुई) के लज्जालु होने का उल्लेख किया है

(क) लज्जालूप्रभृतीनां हस्तादिसंसर्गात् पत्रसंकोचादिका परिस्फुटक्रिया उपलभ्यते।

(ख) शमीप्रपुन्नाट... अगस्त्यामलकीकडिप्रभृतीनां स्वापविबोधतः। [३०]

पर्यावरण वह है जो कि प्रत्येक जीव के साथ जुड़ा हुआ है हमारे चारों तरफ हमेशा व्याप्त होता है। सामान्य अर्थों में यह हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले सभी जैविक और अजैविक तत्त्वों, तथ्यों, प्रक्रियाओं और घटनाओं के समुच्चय से निर्मित इकाई है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में वास्तुशास्त्र या स्थापत्यकला से संबद्ध कुछ मंत्र मिलते हैं, जिनसे उस समय की प्रोन्नत शिल्प व्यवस्था का ज्ञान होता है। वेदों में वसति, दुर्ग, पुर एवं भवन सम्बन्धी विभिन्न संकेतों से प्रोन्नत वास्तु-विकास का ज्ञान होता है।

पंचमहाभूत सिद्धांत- वास्तु शास्त्र का मूल सिद्धांत पंचमहाभूतों (पृथ्वी, आकाश, अग्नि, वायु, और जल) के संतुलन पर आधारित है। एक शास्त्रीय भवन का निर्माण इन महाभूतों के संतुलन को ध्यान में रखता है ताकि सकारात्मक ऊर्जा का संचार हो सके।

वास्तु शास्त्र के अनुसार वृक्ष घर के आसपास घर के पूर्व या उत्तर दिशा में यह पौधे वास्तु शास्त्र के अनुसार अनुसार लगाए जा सकते हैं। तुलसी, केला, आंवला, गेंदा, शमी, हरीदूर्वा, मनीप्लांट, धनिया, हल्दी, लिली, और पुदीना, लगाना शुभ माना जाता है घर का वास्तु दोष दूर होता है सबसे भाग्यशाली पौधे लकी, बैम्बू, पाम, जेडा, और कनेर, प्लांट आंर्किड हैं।

१. बांस का पौधा, घर का पूर्व या दक्षिण पूर्व कोना।

२. नीम का पौधा उत्तर पश्चिम कोना।

३. मनी प्लांट दक्षिण पूर्व कोना

३०. (जैन मत प्रकरण)

लैवेंडर प्लाट उत्तर पूर्व या उत्तर पूर्व दिशा

४. घर के मुख्य द्वार ,अनार पेड दाएं तरफ, शमी पेड बाई तरफ, लगाना चाहिए। लक्ष्मी कुबेर के देवता माने जाते हैं।

स्पाइडर प्लांट- क्रासुला, धन समृद्धि के लिए, अपराजिता, इमली दरवाजे पर नहीं लगना चाहिए। एलोवेरा सकारात्मक ऊर्जा देता है रसोई में लगाना चाहिए। मोरपी शोभा समृद्धि देता है। गुड़हल गेंदा, चंपा ,जपकुसुम यह फूल लगाने चाहिए ,घर की शोभा के लिए। लकी बैंब चीनी एशिया संस्कृति को दर्शाता है दुनिया का सबसे पवित्र वृक्ष पीपल का है।

-सहायक आचार्य,
स्वर्गीय श्री रामभरोसे लाल वर्मा
राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय,
भरतपुर-३११००१

आचार्या अवन्तिसुन्दरी का काव्यशास्त्रीय अवदान

-प्रियाँशी

संस्कृत भाषा का साहित्य समृद्ध और विशालतम है। संस्कृत काव्यशास्त्र की भी मौखिक और लिखित विस्तृत परम्परा विद्यमान है। संस्कृत का शब्द भण्डार, छन्दोयोजना, सन्धि व समास बहुलता और इसकी सर्वांगसम्पूर्णता ऐसी अगण्य विशेषताएँ है जो सुधीजनों को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। संस्कृत अपने समीप ऋग्वेद-रूपी काव्यभाषा का प्रथम सोपान सुरक्षित रखती है। काव्य-भाषा की परख का विज्ञान भी इसी के साथ आरम्भ हो जाता है।

कवि सर्वप्रथम वर्णनीय वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण कर पदार्थ के विलक्षण स्वरूप को देखता है, पश्चात् लोकोत्तर रूप से पदार्थ को भाव रूप में शब्दों में गुम्फित करता है। इस प्रकार कवि की अन्त: अनुभूतियों की कलात्मक, संग्रहणात्मक और समन्वयात्मक अभिव्यक्ति होने से यह कर्म सामान्य न होकर विशिष्ट 'काव्य' नाम से अभिहित होता है तथा काव्य के उचितानुचित नियमों का प्रकथन करने से यह 'शास्त्र'[१] कहलाता है। राजशेखर भी 'कवृ' वर्णने धातु से कवि शब्द की निष्पत्ति स्वीकारते हैं व कवि-वर्णनकर्म को ही काव्य कहते हैं।[२] काव्यशास्त्रीय परम्परा आचार्य भरत से लेकर रेवाप्रसाद द्विवेदी, ब्रह्मानन्द शर्मा, राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिराज राजेन्द्र मिश्र आदि आचार्यों की अविच्छिन्नेन विकासमान अवस्था में प्राप्त होती है। परन्तु प्राप्त इस शृंखला में हमें किसी स्त्री विदुषी का काव्यशास्त्रीय कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। संस्कृत वाङ्मय में काव्यशास्त्रीय विचार प्रस्तुत करने वाली अवन्तिसुन्दरी नामक विदुषी हैं जो अधुना पर्यन्त प्राप्त एकमात्र विदित महिला काव्यशास्त्री हैं। प्रस्तुत पत्र का विवेच्य अवन्तिसुन्दरी के काव्यशास्त्रीय विचारों तथा उसमें भी विशेष रूप से कवि-शिक्षा विषयक मन्तव्य को प्रकाशित करना है।

अवन्तिसुन्दरी रूपककार व काव्यशास्त्री राजशेखर की धर्मपत्नी थीं। राजशेखर की पत्नी होने के कारण अवन्तिसुन्दरी का भी काल नवम शताब्दी का उत्तरार्ध तथा दशम शताब्दी का पूवार्द्ध ही निश्चित होता है।[३] अवन्तिसुन्दरी नाम से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि वे अवन्ति जनपद की रही होंगी। अवन्ति जनपदीय रमणियों की कामविदग्धता का उल्लेख राजशेखर करते हैं।[४]

अवन्तिसुन्दरी काव्य-नाट्य में अनुराग रखने वाली सहृदय विदुषी थीं। राजशेखर रचित कर्पूरमञ्जरी नामक सट्टक इस तथ्य का प्रमाण है कि इसका प्रथम अभिनय इन्हीं की इच्छा से हुआ था।[५] आचार्य हेमचन्द्र ने

१. शासु अनुशिष्टौ इत्यस्माद् धातोः सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् (४.१५८) इत्यनेन सूत्रेण 'ष्ट्रन' प्रत्यय कृते शास्त्रम् इति शब्दः निष्पन्नः। शंसनाद् शासनाद् वा शास्त्रम् (वाचस्पत्यम्, शब्दकल्पद्रुम, आप्टे कोशश्च)

२. कविशब्दश्च 'कवृ वर्णने' इत्यस्य धातोः काव्यकर्मणो रूपम्। काव्यैकरूपत्वाच्च सारस्वतेयेऽपि काव्यपुरुष इति भक्त्या प्रयुज्यते। काव्यमीमांसा, प्रथम अधिकरण, तृतीय अध्याय

३. The result is that Rajshekhara flourished towards the end of the 9th century A.D and the first quarter of the 10th century.History of Sanskrit poetics, page २१६.

४. बालरामायण, अंक १०, विनावन्तीर्न निपुणाः सुदृशो रतिकर्मणि।

५. कर्पूर मञ्जरी १/१

देशीनाममाला में अवन्तिसुन्दरी के देशी शब्दकोश का उल्लेख करते हुए[६], उनके द्वारा जो अनेक शब्दों के नए अर्थ किए गए हैं, उनको प्रकाशित किया है।[७] यह तथ्य अवन्तिसुन्दरी के संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत भाषा में वैदुष्य एवं प्राकृत भाषा के प्रति प्रेम का परिचायक है।

राजशेखर काव्य मीमांसा के १८ अध्यायान्तर्गत पञ्चम, नवम व एकादश अध्यायों में चौहानवंशीया[८] अपनी पत्नी अवन्तिसुन्दरी के तीन मतों का उल्लेख करते हैं। इनमें प्रथम है "काव्यपाक"।

काव्य में पूर्ण परिपक्वता को काव्यपाक कहते हैं। सम्यक शब्द चयन से काव्य में परिपक्वता का सञ्चार होता है और रसाभिव्यक्ति सक्षम होती है। कौन-सा शब्द प्रसंग विशेष में अपनी शक्ति का पूर्ण परिचायक है, जिसके विशेष प्रयोग से सौन्दर्याधिक्य होगा, जिसके अभाव में अभीष्ट अर्थ की सिद्धि का भी अभाव होगा, यही अवबोध आचार्यों के द्वारा शब्दपाक कहा गया है।

शब्दार्थ काव्यशरीर है इस विषय में सन्देह का अवसर प्राप्त नहीं होता। यद्यपि प्रायः सभी आचार्य काव्यलक्षण[९] में शब्दार्थ का प्राधान्य स्वीकारते हैं, किन्तु अर्थाभिव्यक्ति में समर्थतम शब्द के चयन की क्षमता कवित्व के लिए सर्वाधिक अपरिहार्य है। कवि का शब्दचयन पर पूर्णाधिकार होना अनिवार्यरूप से अपेक्षित है। काव्यमीमांसीय पञ्चम अध्याय का प्रकाश्य विषय 'व्युत्पत्तिकविपाक' है जिसका समाप्ति प्रकरण पाक-प्रकरण है। आचार्य राजशेखर के अनुसार काव्य की परिपक्व या सिद्ध अवस्था ही पाक है। स्वाद की तारतम्यता के आधार पर वे नौ प्रकार के पाकों के तीन वर्गों का उल्लेख करते हैं। जो क्रमशः हैं-उत्तमकोटिक पाक-मृद्वीकपाक, सहकारपाक, व नारिकेल-पाक, मध्यम कोटिक पाक-बादरपाक, तिन्तिडिकापाक तथा त्रपुसपाक एवं अधम कोटिक पाक- पिचुमन्द पाक, वार्ताकपाक तथा क्रमुकपाक हैं। पाक सम्बन्धित अन्य आचार्यों द्वारा व्यक्त विभिन्न मत भी काव्यमीमांसा में प्राप्त होते हैं। सर्वप्रथम आचार्य मंगल का मत राजशेखर उद्धृत करते हैं। आचार्य मंगल निरन्तर अभ्यास से सुकवि के वाक्य में आए सुबन्त तथा तिङन्त पदों की श्रोत्र-मधुर शब्दावली की व्युत्पत्ति को पाक कहते हैं[१०] अर्थात् सुन्दर पद-रचना ही पाक है। तत्पश्चात कुछ अन्य आचार्यों द्वारा इसे सौशब्द्य कहे जाने का भी वे उल्लेख करते हैं। अन्य विद्वानों के अनुसार, ''पद निवेशन में प्राप्त निष्कम्पता पाक है। पद विन्यास में कवि के चित्त में प्राप्त स्थिरता ही सरस्वती की सिद्धता है अर्थात् इस सिद्धावस्था में कवि के द्वारा किया गया वर्ण-विन्यास पाक है।''[११]

६. इदमहो कौमारः। कुमार्यां भव इति व्युत्पत्तेः। इदमहं कौमारमित्यवन्तिसुन्दरी। देशीनमाला, १/८७

७. ओहुरं अवनतं स्रस्तं चेत्यवन्तिसुन्दरी, देशीनमाला १/१५७

८. चाहुमानकुलमौलिमालिका राजशेखर कवीन्द्रगेहनी।
भर्तुः कृतिमवन्तिसुन्दरी सा प्रयोक्तुमेवेच्छति।। कर्पूरमञ्जरी १/११

९. शब्दार्थौ काव्यम्, काव्यालंकार
रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। रसगंगाधर १/१
शरीरं तावदिष्टार्थ-व्वच्छिन्ना पदावली। काव्यादर्श १/१०

१०. सततमभ्यासवशतः सुकवेः वाक्यं पाकमायाति। कः पुनरयं पाकः इत्याचार्याः परिणामः इति मंगलः। कः पुनरयं परिणामः इत्याचार्याः। सुपां तिङ्ङां च श्रवः यैषा व्युत्पत्तिः इति मंगलः। सौशब्दमेतत्। काव्यमीमांसा अध्याय ५ पृष्ठ ४९

११. पदनिवेशनिष्कम्पता पाकः इत्याचार्याः, तदाहुः-आवापोद्धरणे तावद्यावद्दोलायते मनः। पदानां स्थापिते स्थैर्ये हन्त सिद्धा सरस्वती। काव्यमीमांसा अध्याय ५ पृष्ठ ४९

काव्यशास्त्र में काव्यपाक की सर्वप्रथम प्रामाणिक रूप से चर्चा करने वाले आचार्य वामन का मत इन मतों के बाद वामन अनुयायियों के रूप में राजशेखर प्रस्तुत करते हैं। इनके अनुसार आग्रहवशात् भी पदों की स्थिरता में संशयात्मक स्थिति रहती है। एक पद को लिखकर पुनः उसे परिवर्तित न करना ही पाक है[१२] पदों को स्थिर तभी कहा जा सकता है, जब उनका परिवर्तन किसी भी प्रकार से पर्याय शब्दों के द्वारा भी सम्भव न हो एवं आचार्य वामन पदों में परिवृत्ति सहिष्णुता का न होना पाक मानते हैं।

विदुषी अवन्ति-सुन्दरी पाक के सम्बन्ध में दिए गए उपर्युक्त सभी मतों से असहमत हैं। इन मतों के सम्बन्ध में वे कहती हैं-

'इयमशक्तिर्न पुनः पाकः। यदेकस्मिन् वस्तुनि महाकवीनामनैकोऽपि पाठः परिपाकवान् भवति'[१३] अर्थात् यह तो अशक्ति है पाक नहीं, क्योंकि महाकवियों के काव्यों में एक के स्थान पर अनेक पाठ मिलते हैं। वे सभी पाठ परिपक्व व उपयुक्त होते हैं।

अवन्तिसुन्दरी वर्णों की परिवृत्ति-असहिष्णुता को कवि के काव्य का पाक नहीं मानतीं अपितु काव्य रचना में पाठ भेदों के होने पर भी उस काव्य का सौन्दर्य यथावत् रह सकता है। पाक का लक्षण स्वयं देते हुए वह कहती हैं- ''तस्याद्रसोचितशब्दार्थ- सूक्ति-निबन्धनपाकः''[१४] रसानुकूल शब्द, अर्थ तथा सूक्ति का काव्य निबन्धन पाक कहलाता है। इस विषय में वे किसी पूर्ववर्ती विद्वान् का मत भी प्रमाण्येण उद्धृत करती हैं -

गुणालङ्काररीत्युक्ति-शब्दार्थ गृथनक्रमः।
स्वदते सुधियां येन वाक्यपाकः समां प्रति ॥ [१५]

अर्थात् जहाँ गुण, अलंकार, रीति, युक्ति, एवं शब्दार्थ का गुम्फन रसज्ञों को आनन्द प्रदान करे, वही वाक्य पाक है।

अवन्तिसुन्दरी काव्य में मात्र सुबन्त तिङन्त के सौन्दर्य की अपेक्षा इनसे युक्त भाव, रस से अधिक प्रभावित प्रतीत होती हैं। उनके अनुसार मात्र सौशब्द पाक का उदाहरण नहीं हो सकता, गुणालङ्कार आदि अंगों से पुष्ट होने वाले रस की, सहृदय को चर्वणा कराने वाला ही वाक्य पाक होता है। अपने विषय को और अधिक स्पष्ट करने के लिए वे एक अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत करतीं हैं-

सति वक्तरि सत्यर्थे शब्दे सति रसे सति ।
अस्ति तन्न बिना येन परिस्रवति वाङ् मधुः॥[१६]

वक्ता, अर्थ, शब्द तथा रस इन समस्त तत्त्वों के होने पर भी जिसके बिना वाणी मधु को नहीं प्रवाहित करती, वही पाक है।

राजशेखर ने पाक के सम्बन्ध में निष्कर्ष रूप से जो मत व्यक्त किया है वह निश्चितरूप से अवन्तिसुन्दरी के कथन का ही समर्थन करते हुए कहते हैं कि पाक व्यवहार का अंग है, जिसका अनुभव काव्य पढ़कर सहृदय

१२. आग्रहपरिग्रहादपि पदस्थैर्य- पर्यवर्यवसायस्तस्मात्पदानां परिवृत्तिवैमुख्यं पाकः इति वामनीयाः। वही ५ पृष्ठ ५०

१३. काव्यमीमांसा अध्याय ५ पृष्ठ सं० ५०

१४. काव्यमीमांसा अध्याय ५ पृष्ठ सं० ५०

१५. काव्यमीमांसा अध्याय ५ पृष्ठ सं० ५०

१६. काव्यमीमांसा अध्याय ५ पृष्ठ सं० ५०